वेद विद्या संगोष्ठी में प्रास्ताविक सम्बोधन

डा. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

गंगा के तट पर ज्ञान के प्रवाह में आज हम जिस विषय की चर्चा कर रहें हैं, उसकी साक्षी तो यही भागीरथी गंगा है। ऐसी कल्पना है कि वेद में जो साहित्य है, वह विश्व का श्रेष्ठ ही नहीं अपितु सबसे पुरातन साहित्य भी है। यह बात तो मैक्समूलर ने भी कही है कि मनुष्य के पुस्तकालय में सबसे पुराना ग्रन्थ वेद ही है। केवल उत्खनन में विश्वास करने वाले स्थूलदर्शी हैं, समदर्शी नहीं हैं। स्थूलदर्शी हैं क्योंकि उनको स्थूल का प्रमाण ही पर्याप्त है और वही केवल ग्राह्य है उनके लिए। ऐसे स्थूलदर्शी इतिहासकारों के लिए मेरे मन में करुणा तो है किन्तु भक्ति नहीं है। उनके साथ सहमति भी नहीं है। एक किस्सा याद आता है सोवियत यूनियन का। स्टालिन वहां के डिक्टेटर थे किन्तु उनको जब लगा कि दफ्तरशाही, लाल फीताशाही बहुत बढ़ गयी है तो उन्होंने स्वयं यह किस्सा अपने एक भाषण में बयान किया। कहा कि एक सोवियत नागरिक बेचारा राशन लेने जाता तो उसको अपना बर्थ सार्टिफिकेट दिखाना पड़ता। बिना बर्थ सर्टिफिकेट दिखाये, बिना अपने जन्म का प्रमाण पत्र दिखाये उसको राशन नहीं मिलता, उसको यात्रा के लिए टिकट नहीं मिलता। उसका जन्म का प्रमाण पत्र खो गया, वह अधिकारी के पास पहुँचा कि मुझे राशन चाहिए। उन्होंने कहा कि तुम्हारा जन्म का प्रमाण पत्र कहाँ है? उसने कहा कि साहब, वह तो खो गया। अगर तुम जन्म का प्रमाण पत्र नहीं लेकर आये हो तो मैं कैसे विश्वास करूं कि तुम्हारा जन्म हुआ है या तुम हो।

विडम्बना यह है कि हमारा भारतीय इतिहासकार इस प्रकार की मानसिक दासता में खोया हुआ रहा कि उसको यह आसान लगा कि जो कुछ दिया गया उसी को ग्रहण कर ले, जूठन को ही प्रीतिभोज समझ ले। और यह काल क्रम की व्यवस्था में इस मानसिक व्यतिक्रम का आघात भारतवर्ष की संस्कृति पर और भारतवर्ष के इतिहास तत्त्व पर बहुत हुआ है। जब उनको यह लगा कि वेद तो एक सत्य है, एक ध्रुव सत्य है, भारतीय मनीषा का सबसे बड़ा आधार है तो उसके कालक्रम को आगे पीछे करने में लगे रहे। आपने कहा कि भगवान् बुद्ध का, भगवान् महावीर का, उस समय का कालक्रम भी निश्चित करने में लगे हुए थे तो अचानक यह बात आयी और वर्षों वर्षों उन्होंने वाराणसी के काशी के पार्श्वनाथ को स्वीकार नहीं किया कि वे इतिहास पुरुष थे। किन्तु उनमें से बात यह है कि हर लंका में कोई तो राम का प्रेमी भी होता है, सत्य का प्रेमी भी होता है तो जर्मनी के हर्मन जैकोबी ने पूरे तथ्य पर यह प्रमाणित किया कि भगवान् पार्श्वनाथ ईसा पूर्व की नवीं शताब्दी में हुए थे और उन्होंने उनकी तारीखें बतायीं, उनका स्थान बताया, सब कुछ बताया। अब उनके लिए बड़ी मुश्किल यह है कि इतने पुराने को कैसे मान लें। उनको ग्रीस और रोम से पुराना कुछ ठीक नहीं लगता है। किन्तु यह नहीं जानते कि ग्रीस और रोम ने बहुत कुछ भारतवर्ष से लिया था। यहाँ का विज्ञान यूनान का विज्ञान बना। यहाँ दर्शन यूनान का दर्शन बना।

मेरे एक मित्र जो यूनान के राजदूत होकर यहाँ आये थे और जब लौटे तो एक पुस्तक लिखी "प्राचीन यूनान में प्राचीन भारत" और उन्होंने यह दिखाया कि किस प्रकार हमारी भाषा की उत्पत्ति किस प्रकार हमारे concepts की उत्पत्ति भारतवर्ष में हुई। विलियम जोन्स ने बहुत पहले कहा था कि इजिप्ट और यूनान का जो देव मंडल है वह भारतवर्ष के देव मंडल पर आधारित है। किन्तु उसको भी दूसरे विद्वानों ने कहा कि यह तो कुछ कल्पना पर आधारित है। यह बात वर्षों से मेरे मन को यह साधती रही है कि भारतवर्ष के इतिहासकार आत्म गौरव की बात नहीं कहता, गर्वोक्ति की बात नहीं कहता, किन्तु सत्य की शोध करने का साहस भी क्या नहीं रहा? और इस सत्य की शोध न करने के कारण भारतवर्ष की अस्मिता कभी-कभी लगता है कि नासमझ लोगों के हाथों में, चाहे वह पाठ्यक्रम के माध्यम से, चाहे बिना पाठ्यक्रम

के अपने शोध संस्थान के माध्यम से चली गयी हो। उनको न मालूम इस बात की बड़ी चिन्ता है कि आर्य लोग मांस खाते थे कि नहीं खाते थे और गोमांस खाते थे कि नहीं खाते थे। यह बात उनके मतिष्क में है, इसको कहना बहुत आवश्यक है। न मालूम इससे क्या सिद्ध करना चाहते हैं और कैसे यह बात इतनी प्रासंगिक है कि उसको एक पाठ्यक्रम की पुस्तक में मैंने देखा बार-बार दुहराया गया है।

इतिहास के तत्त्व को समझने के लिए यदि हम वैदिक प्रभाव पर जाते हैं, छाया पर जाते हैं, संस्कृत साहित्य में तो मुझे लगता है कि कोई भी एक शब्द उस व्यापक प्रभाव को अभिव्यक्ति नहीं दे सकता है। प्रभा शब्द है किन्तु प्रभाव भी प्रभा से नहीं बना है। प्रभा है इसीलिए प्रभाव है और उस प्रभा का प्रभाव समग्र साहित्य में मिलता है। प्रत्येक प्रकार का साहित्य, मैं यह नहीं मानता कि साहित्य काव्य साहित्य ही होता है। मेरी मान्यता है कि साहित्य की समग्रता उसके वैविध्य में है। साहित्य की समग्रता दर्शन में है, इतिहास में है। साहित्य की समग्रता विज्ञान में है। साहित्य की समग्रता कला में है। सब कुछ साहित्य है। प्रत्येक प्रकार और विधा के साहित्य में वैदिक छाया, प्रभाव, प्रतिबिम्ब आपको दृष्टिगोचर होता है। मैं यह मानता हूँ कि यह इसलिए है कि इस साहित्य में सबसे पुरानी एक शब्दावली है। भारतवर्ष को एक दर्शन और एक शब्दकोश, वाक् और अर्थ दोनों हमको वैदिक परम्परा से मिलते हैं। यह बात समझनी बहुत जरूरी है कि वैदिक दृष्टि में मर्त्य और अमर्त्य, जो साधारण मरणशील प्राण है और जो अमर तत्त्व है, उसकी कुक्षि एक ही है, उसका गर्भ एक ही है। इसीलिए ईश्वरत्व और मनुष्यता में जुड़ने की सम्भावना है। इसलिए जब तक हम वेदों के प्रतीक तत्व को नहीं समझेंगे तब तक उस विचार विन्यास को, उस शब्द विन्यास को नहीं समझ सकते जो कालान्तर में संस्कृत साहित्य में प्रस्फुटित हुआ है। मेरा यह मानना है कि वेद उस अग्नि का नाम है, उस ऊर्जा का नाम है, उस तेजस्विता का नाम है जो मनुष्य को ईश्वरीय प्रतीति से मिली। जो मनुष्य को उसकी दिव्यता से मिली, उसकी भव्यता से मिली। अगर वेद की अग्नि से ऋत- जिससे हमको अग्नि मिली है और ऋत की कल्पना करें तो कर्तव्य, धर्म, पुरुषार्थ इन सबका जन्म और उद्भव ऋत से हुआ है। यह वैदिक साहित्य की ओर वैदिक दृष्टि की देन है। इसलिए समग्र सृष्टि का साक्षात्कार उसकी समग्रता में करने का प्रयास है वेद।

दो अवधारणाएँ है। एक तो हम वेदत्रयी को परम्परा के रूप में जानते हैं, कभी चार वेदों के रूप में कहते हैं, क्योंकि जैसा कि मन्त्रकार ने कहा है 'हेतुर्न: कार्य सिद्धे:', अपने कार्यसिद्धि के लिए चतुर्वेद उसको कहा गया। किन्तु यह वेदत्रयी जो है, यह 'सर्वार्थदर्शनम्' है। सबसे बड़ी बात यही है वैदिक दृष्टि के प्रभाव की कि यह सर्वार्थ दर्शन खण्डित दृष्टि नहीं है, अखण्डित दृष्टि है, सर्वार्थ दर्शन है। सर्वांगीण साक्षात्कार है। इसीलिए वेदमन्त्र में ऋषि कह सके "एकं सद् विप्रा: बहुधा वदन्ति"। नहीं तो कह देते "एकं सत् मूढ़ा: बहुधा वदन्ति"। उन्होंने बहुधा वदन्ति को मूढ़ नहीं कहा, विप्र कहा। और इसलिए कहा कि उनमें इतनी सर्जनात्मकता थी, उनकी सर्जनात्मकता का फलक इतना विशाल था कि वह जानते थे कि कितने प्रकार होते हैं सत्य के, कितनी छवियां होती है, कितने स्वरूप होते हैं, कितनी अभिव्यक्तियां होती हैं। अनेकान्त में वही बात अभिव्यक्त हुई है कि 'एकं सद्विप्रा: बहुधा वदन्ति'। लोग समझते हैं कि वेद कोई एक पंथ विशेष का धर्म ग्रन्थ है। धर्म और पंथ की बात समझ में नहीं आती क्योंकि शब्दों के अभाव में हमने सेक्युलरिज्म को भी धर्म निरपेक्षता कह दिया जो कि मूर्खता का स्वयं प्रमाण है। शाब्दिक मूर्खता का चरम प्रमाण है। श्रीमती गांधी ने संविधान का संशोधन किया और तब एक शब्द उसमें डाला-प्राक्कथन में 'सेक्युलर'। सेक्युलर शब्द अच्छा है, सेक्युलर हम अपने तरीके के सेक्युलर हैं। किसी पश्चिम की नकल के सेक्युलर नहीं हैं। शब्द जब बन गया, उसमें चला गया तो उसका अनुवाद करना जरूरी होता है क्योंकि प्राधिकृत अनुवाद हिन्दी में होना जरूरी है। प्राधिकृत अनुवाद हुआ तो शब्द लिखा गया धर्म निरपेक्ष। क्योंकि यही प्रचलित शब्द है। उसका एक नियम यह भी है कि किसी संविधान शास्त्री के पास जायेगा, वह प्रमाणित करेगा कि यह अनुवाद ठीक है, तभी राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर करते हैं। मेरे पास भेजा गया। जब मेरे पास

यह अनुवाद आया तो मैनें कहा कि यह तो किसी ऐसे व्यक्ति ने इसका अनुवाद लिखा है जिसके लिए हमारे यहाँ 'मक्षिका स्थाने मक्षिका पात:' का प्रमाण है कि मक्खी मरी हुई मिली तो उसी को लगा दिया इस शब्द पर। मैंने कहा कि यह सेक्युलर शब्द का अनुवाद तो ठीक नहीं है। मैं तो इसको प्रमाणित करने मे असमर्थ हूँ। वह जल्दी में थीं तो उन्होंने मुझे मिलने के लिए कहा। उन्होंने कहा कि बहुत जल्दी है, आपने मना भी कर दिया। मैंने कहा कि बात यह है कि इसका अनुवाद करना अर्थ का अनर्थ है। क्यों? मैंने कहा कि पहला ही पृष्ठ खोलिए सेक्युलर का अर्थ है धर्म निरपेक्ष। हमारे यहाँ धर्म का अर्थ है कर्तव्य। हमारे यहाँ धर्म का मतलब है स्वभाव और जो राज्य कर्तव्य निरपेक्ष लिख दीजिए आप। धर्म निरपेक्ष है तो लिख दीजिएगा कर्तव्य निरपेक्ष। राज्य की स्थापना करने के लिए हमने यह किया है। उन्होंने कहा कि नहीं, आप सही कह रहे हैं। मैंने कहा, मैं तो सही कह रहा हूँ लेकिन अनुवादक सही नहीं कह रहा है। क्या करें, मुझे तो बहुत जल्दी हैं। मैंने कहा कि फिर आप इसको ठीक कीजिए। उन्होंने कहा कि आप ही लिख दीजिए तो मैने अपने हाथ से 'पंथ निरपेक्ष' लिखा। अब सवाल यह है कि हम जब वेद पर दृष्टिपात करते हैं तो यह समझना ही गलत है कि वेद किसी एक पंथ का ग्रन्थ है। यह विश्व का ग्रन्थ है, मनुष्य की मानवता का ग्रन्थ है। यह नालेज सोसायटी का पहला ग्रन्थ है जिसके आज हम नालेज सोसायटी समझते हैं, हमने 21 वीं सदी और 20 वीं सदी में नालेज सोसायटी का आविष्कार किया है। यह नालेज सोसायटी का पहला ग्रन्थ है वेद। नालेज से ही शब्द भी बना है। विदित जो आज है और बहुत कुछ अविदित भी है। किन्तु वेद आज विदित है, उसमें भी और आगे जो विदित होने वाला है, आज अविदित है उसका भी एक ग्रन्थ है। यही बात इस बात को भी बता देती है कि आज जो विदित है वही सम्पूर्ण ज्ञान नहीं है, वह अधूरा है।

वेद अर्थ के निरन्तर उद्घाटन की अनवरत यात्रा का नाम है। सत्य के निरन्तर उद्घाटन की अनवरत यात्रा वेद है और इसलिए मैं समझता हूँ कि वेदत्रयी तो एक रूढि अर्थ में है। किन्तु वेद तो निरन्तर ज्ञान का प्रवाह है। कोई बांध ले तो भी वह रुकता नहीं। कम नहीं होता क्योंकि पिपासा निरन्तर है, मनुष्य का परिचय है। इसीलिए वेद को समझने के लिए हमको यह जानना पड़ेगा कि वेद का अर्थ क्या है? वेद का अर्थ है विश्वात्मक ज्ञान। विश्व का सृष्टि का निरन्तर साक्षात्कार और परत पर उघड़ती है, "Unfolding layers of truths, and that is Veda." मैं वेद के इस दूसरे अर्थ को भारतीय परम्परा का सबसे बड़ा परिचायक मानता हूँ। यह वेद की परम्परा है जो हमको ज्ञान के रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करती है। जो कह सकती है 'नेति नेति' यह भी नहीं, यह भी नहीं, पर और कुछ। यह सम्भावना का संसार है। इस सृष्टि से वेद और वेद की विद्या बुद्धि का कुतूहल नहीं है। जिज्ञासा है किन्तु कुतूहल नहीं है। पाण्डित्य का विलास भी नहीं है। अच्छा लगता है पाण्डित्य का विलास भी किन्तु वह वहां तक सीमित नहीं है। यह उसकी परिधि नहीं है।

वेद विद्या का लक्ष्य क्या है? प्राण या चैतन्य का साक्षात्कार। यह चेतना का विज्ञान है, चेतना का साहित्य, चेतना का साक्षात्कार है और चेतना के साक्षात्कार के ऋषियों ने जो देखा, वह एक प्रकार से उस चेतना ने जितना उनको उद्घाटित कर दिया एक ऋषि को, उतना उस ऋषि ने देखा, उस ऋषि ने अपना मन्त्र दे दिया। फिर दूसरे ऋषि ने फिर से सत्य देखा, उसने दूसरा मन्त्र दिया। इसीलिए आप देखेंगे कि वेदों में अलग-अलग ऋषियों ने अपने आविष्कारों का कोष दिया। स्वामी विवेकानन्द से पूछा गया कि वेद का अर्थ क्या है और उन्होंने जो वेद की व्याख्या की, मैं उसको अधिक प्रामाणिक मानता हूँ भारतीय संस्कृति के प्रमाण से और वह यह है कि भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा, उन्होंने ऋषि भी नहीं कहा उस समय, बड़ा scientific clinical terminology। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा, भिन्न-भिन्न कालों में आविष्कृत सत्यों का संचित कोश है वेद। इसलिए वेद बहुत पुरातन समय से आरम्भ हुआ, इसलिए उसको अनादि कह सकते हैं क्योंकि उसका आदि बहुत पुराना है। किन्तु अनन्त है वह, अन्त नहीं है उसका। क्योंकि मनुष्य की मेधा का अन्त नहीं है। ईश्वरीय अनुकम्पा का अन्त नहीं है। इसलिए स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि

निरन्तर रूप से आविष्कृत सत्यों का संचित कोश, इसको वेद कहना चाहिए। वेद को इसलिए मैं दो रूपकों से रूपायित करना चाहता हूँ। एक है कल्पद्रुम और एक है कामधेनु। कामधेनु भी है और कल्पद्रुम भी है क्योंकि यह ज्ञान का प्रवाह है। यह ज्ञान है और ज्ञान भी सीमित शब्दों में, सीमित अर्थ में नही, बल्कि वैश्विक दृष्टि से प्रत्येक विधा का ज्ञान, जीवन का ज्ञान। जैसा कि मैने कहा कि जीवन के साक्षात्कार का नाम ही वैद है।

ऋत ने साहित्य को जन्म दिया, अग्नि को जन्म दिया, उस ऊर्जा को जन्म दिया जिससे कवि स्वयंभू हो जाता है। कवि, हमने तो ऋषियों को कवि कहा ही है और हमने यह सीमा रेखाएं नहीं खींची-यह साहित्य है, यह विज्ञान है, यह दर्शन है। वह सब कुछ वेद है क्योंकि सब कुछ ज्ञान है। इस दृष्टि से भारतीय वाङ्मय में एक निरन्तर धारा चल रही है अन्वेषण की, आविष्कार की, समझने की, साक्षात्कार की, अभिव्यक्ति की और कभी-कभी यह कह देने की कि जितनी हमने अनुभूति पायी है, उसको हम अभिव्यक्ति दे नहीं सकते। सब कुछ जो अनुभूत होता है वह अभिव्यक्त नहीं होता। इस दृष्टि से वेद एक ओर आध्यात्मिक प्रकाश यदि अभिप्रेत है तो दूसरी ओर आत्मा साधना के लिए एक उपकरण है। तीसरी ओर अभिव्यक्ति का वाहन है। चौथी ओर हमारी सर्जनात्मकता का एक स्वरूप है। वेद का इसलिए कहीं विराम नहीं है। चौथी ओर हमारी सर्जनात्मकता का एक उपकरण है। वेद अविराम है। एक जगह यह कहा गया कि अवितथ्यानि बिना दोष के जब वेद का स्वर सुना जाए तो मनुष्य की सभी सम्भावनाएं जाग्रत हो जाती हैं। जाग्रत होने का अर्थ वेद में ही कहा है 'यो जागर्ति ऋचा कामयन्ति' ऋचा कामना उसी की करती है जो जागता है और जागता वही है कि जो उठ खड़ा होता है। मुझे एक बार किसी ने कहा कि स्वामी विवेकानन्द ने यह कैसे कहा कि 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'। खड़ा होने के बाद में जागेगा, यह कैसे? पहले कह रहे थे जाग्रत उत्तिष्ठत। उन्होंने कहा चेतना है तो उठेगा। उठेगा तब जागेगा। क्योंकि जागने का अर्थ केवल आंखें खोलने से नहीं है, जागने का अर्थ अधिक व्यापक है और यही हमारे साहित्य में स्थान-स्थान पर चाहे वह सौन्दर्य बोध की दृष्टि से हो, चाहे वह अलंकार में हो, चाहे वह रस में हो, जिस संस्कृति में यह कह दिया कि वैदिक अवधारणा है—रसो वै स:। यह ऐसी विशाल अवधारणा है कि जो पूरी सृष्टि को समेटने की क्षमता रखती है। रसो वै स:-यह केवल भारत के ऋषि कह सके और यह कहकर उन्होंने समूचे साहित्य को समेट लिया।

मैं यह समझता हूँ कि वेद हमारे साहित्य में इसी प्रकार है जैसे कि तिल में तेल होता है। हर तिल में तेल तो है ही। तिल में जो तिल है वही साहित्य में वेद है। यह साहित्य में इसलिए है कि वेद एक धारा तो यह रही जिसने वेद को प्रमाण मान लिया, दूसरों ने कहा, नहीं वेद प्रमाण नहीं है। ऐसा प्रमाण नहीं है कि जिसका कुछ संशोधन न हो सके। एक बड़ा सुन्दर प्रसंग आया है—महावीर का एक संवाद होता है। महावीर कहते हैं मैं आर्य परम्परा का हूँ। मुझको कहा गया आप आर्य परम्परा के कैसे हो सकते हो? कहाँ है आपकी वेदी, कहाँ है आपकी अग्नि? तो कहते हैं मैं तुम्हारी परम्परा का हूँ। क्योंकि आर्य परम्परा में प्रशस्त आर्य वही है जिसके हृदय की अग्नि प्रज्ज्वलित है। जिसकी साधना ही उसकी तपस्या है। जिसकी वेदी उसका जीवन है। अब यह एक नए प्रकार से रूढ़अर्थ होता है, वह आवश्यक है जीवन में। किन्तु रूढ़के आगे जो अर्थ होता है वह अनिवार्य है। आवश्यक तो सामान्य होता है किन्तु अनिवार्य जो है वह अन्तरंग होता है। मैं यह मानता हूँ कि वेदों के बारे मे जितनी बात हम करें, किन्तु सारी विद्या का नाम वेद है। *The Thousand Syllabled Speech* (सहस्राक्षरा वाक्) 'Vision in Long Darkness'. यह पुस्तक बड़ी सुन्दर पुस्तक है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने बहुत काम किया है जिसकी विशालता, विपुलता की प्रशस्ति जितनी की जाय, उतना कम है। उन्होंने किताब का मन्त्र भी रखा है 'स्तुता मया वरदा वेदमाता' शुरू में ही उन्होंने कहा है। अपने वक्तव्य के अन्त में उन्होंने कहा है 'नमो ऋषिभ्य: पूर्वजेभ्य: पूर्वेभ्य: पथिकृद्भ्य:।' इसी में उन्होंने कहा है कि ऋषि दीर्घतमस् की कल्पना की कि एक long night of darkness और वह ऋषि उस पूरे long night of darkness को देखता है। उसमें कैसे

प्रकाश का सृजन होता है, इस बात का वर्णन करते हुए जब उन्होंने विद्याओं की बात की। अग्नि विद्या से अश्वत्थ विद्या, अदिति विद्या, अश्वमेध विद्या, अक्षर विद्या, असुर विद्या, ऐसी करीब-करीब दो सौ उन्होंने नाम यहां लिखे हैं। जो कि प्रचलित नाम थे विद्याओं के। वाक् विद्या उसमें है, चयन विद्या, गणपति विद्या, चित्र शिशु विद्या, छन्दो विद्या, ज्योतिष्टोम विद्या, जातवेदविद्या, तपो विद्या, विद्याएं बहुत हैं। इन विद्याओं की विविधताओं में ही साहित्य का सृजन हुआ है साहित्य का सृजन जब हुआ तो यह कहके नहीं हुआ कि मैं केवल सृजन कर रहा हूँ। हाँ, यह जरूर है कि नाटक लिखा तो नाटक लिखा। किन्तु लिखने के बाद में यह ध्यान रहा कि हम लिख रहे हैं समग्र जीवन के लिए, समग्र दृष्टि से लिख रहे हैं।

कुछ ऐसे रूपक हैं वेदों के जो हमारे शब्द कोश को और साहित्य के प्राण बन गये। जैसे रथ का रूपक है। रथ रूपक का हजारों हजारों तरीके से संस्कृत साहित्य में प्रयोग हुआ है। अर्धनारीश्वर का रूपक, इसका भी वैदिक स्रोत है। एक बड़ा सुन्दर रूपक है कि सृष्टि एक वृक्ष है और उस पर सभी प्राणी बैठे हैं और सभी एक साथ चहचहा रहे हैं और वह एक इन्वोकेशन के रूप में सुनायी दे रहा है। अब यह बात साहित्य में है किन्तु है इसका स्रोत वही वैदिक साहित्य। सुपर्णा या दो चिड़ियाँ बैठी हैं। वाक् को सहस्राक्षर सहस्र वाक् और सहस्राक्षरा कहा गया और इसको धेनु भी कहा गया। धेनु कहा गया वाक् को और इसलिए कहा गया कि इसमें गाति भी है और इसमें रस भी है। इसी कल्पना को बढ़ाते हुए हमारे यहां एक इस बात की कल्पना की गयी कि वेद और साहित्य पर उसका असर जीवन के दर्शन में है। सौन्दर्य का निरीक्षण कर रहे हैं तो उसमें एक सम्पूर्णता है। शब्द का प्रयोग कर रहे हैं तो उसमें सहस्रों प्रतीक तत्व उसमें सम्मिलित हो जाते हैं। एक बड़ी विचित्र विलक्षण बात है संस्कृत साहित्य में और वह है कि उसके कई प्रतीक तत्त्व उसमें सन्निहित हैं, छिपे हुए हैं, गुम्फित हैं। और यह गुम्फित अर्थ एक ही शब्द में है। यह संस्कृत साहित्य की एक विशेषता है कि जिसमें निरन्तर आत्म-साक्षात्कार की भावना है और उस भावना से ही वेद को जो अंग हैं, वह वैदिक दृष्टि के बाद में वैदिक, जो वेदत्रयी को न लेकर वेदांग को लीजिए तो आपको मालूम होगा कि उनका साहित्य में कैसे प्रस्फुटन हुआ।

शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसं ज्योतिषमेनं चैव षडंगोवेद उच्यते ।

छ: अंग तो बताए उन्होंने किन्तु इन छ: से एक-एक से हजारों प्रकार की निष्पत्तियां हुई है और इसीलिए वेद केवल वेदत्रयी नहीं है बल्कि वैदिक साहित्य की सम्पूर्णता है।

अब, वेदव्यास नाम कैसे पड़ गया? भगवान् कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास कब हो गये और क्यों हो गये? इस बात को में रेखांकित करने के लिए कह रहा हूँ कि वैदिक प्रभाव साहित्य पर कितना है। उनका नाम तो वेदव्यास नहीं था। व्यास भी नहीं था और वेद भी नहीं था। फिर हमारे यहाँ जो सबसे आधिकारिक सिंहासन है उसको व्यास पीठ हमने कह दिया, यह क्यों? वाल्मीकि और भगवान् वेदव्यास हमारे आर्षकवि हुए और इन्होंने शाश्वत जीवन की परिकल्पना करते हुए और इनसे ही प्रेरणा लेते हुए सबने बाद में साहित्य लिखा। इन्होंने बार-बार यही कहा कि आपने जो बात कही कि हम तो वेद के अर्थ का टीकाकार हैं, हमारा साहित्य वेद के अर्थ को उद्घाटित कर रहा है। वेद के अर्थ को उद्घाटित करने का मतलब जीवन के सम्पूर्ण ज्ञान को उद्घाटित करना है। इसी प्रमाण से जब कृष्ण द्वैपायन की इतनी कीर्ति हुई कि वह स्वयं बहुत बेचारे हो गये, भगवान् का नाम इनको दिया गया। वह अलग बात है। उनका नाम वेदव्यास क्यों हुआ? वाल्मीकि जिन्होंने शोक को श्लोक में परिवर्तित कर दिया। उन लोगों के मन में उनके साहित्य में उनकी सर्जनात्मक प्रक्रिया में वेद का स्थान इतना केन्द्रीय कैसे हो गया? क्योंकि स्वयं कृष्णद्वैपायन कहते हैं। उन्होंने वेद के चार नाम दिए किन्तु उससे बाद में यह कहा कि य एवं वेद....वेदविदांवर, उनका नाम इसलिए पड़ा कि उन्होंने वेद का अध्ययन किया था और वेद जानने वालों में भी वह सर्वश्रेष्ठ थे। इसलिए उनको वेदव्यास कहा गया। स्वयं भगवान् **गीता** में कहते हैं—'मुनीनाम अपि अहम् व्यास:।' वृक्षों में अश्वत्थ किन्तु मुनियों में मै व्यास हूँ। हमारे दो महानतम ग्रन्थों में जय-महाभारत इसको कहते हैं और रामायण। ये दोनों ही जय-विजय के काव्य हैं। हमारी जाति के मूल्यों के काव्य हैं।

और इन दोनों मूल्यों के काव्य में वेद का प्रमाण है। ऐसा प्रस्फुटित हुआ है कि जिसमें हमको यह लगता है कि सहस्त्राक्षरा वाक् दीर्घतमस् ऋषि जैसे Long night of darkness in human history को देखते हुए प्रकाश देते हैं, हर पड़ाव पर आपको प्रकाश देते हैं।

साहित्य का हर पड़ाव उस तेल से जिसको मैंने तिल में तेल कहा, उस तेल से उस वेद से प्रकाशित होता है। उस वेद के स्नेह से वह प्रदीप्त होता है। ऐसा मैं मानता हूँ। प्रमाण देने को बहुत है। किन्तु अव्यय पुरुष और अक्षय पुरुष के बीच सेतु बनाने का काम वेद की दृष्टि ने हमारी साहित्य की सृष्टि में किया। और अव्यय पुरुष और अक्षय पुरुष के बीच जो तादात्म्य हमारी संस्कृति में हुआ है वही हमारे साहित्य में संवेदना का प्राण है। वही हमारे साहित्य में हृदय की धड़कन है। मनुष्यता का स्वरूप उसी में प्रगट होता है और वह सब कह लेने के बाद मैं यही कहूँगा कि मैंने जो कुछ कहा है वह थोड़ा है, कहने को बहुत है और कितना है कि हम अपना जीवन भर भी जाह्नवी के तट पर ज्ञान प्रवाह के इस कक्ष में बैठकर बिता दें तो भी कम पड़ेगा। किन्तु जैसा कि कालिदास ने **मालविकाग्निमित्र** में कहा है अग्निमित्र कोई बहुत सुन्दर चित्र बनाकर लाता है, तब भी क्योंकि अग्निमित्र समझता है कि मालविका तो बहुत अधिक सुन्दर है। तो कहता है, ''सम्प्रति शिथिलसमाधिंमन्ये, येनेयमालिखिता'' तो सच बात यह है कि हम कितना भी कहें कि शिथिल समाधि माने जायेंगे। किन्तु समाधि को अधिक जागृत करें, अधिक प्रकाशित और आलोकित करें, अधिक अनुप्राणित करें और समझें कि हमारी संस्कृति की अनवरत धारा का अर्थ क्या है? आज उसकी उपेक्षा का अनर्थ तो हम देखते हैं किन्तु उसके अर्थ की खोज में हम उदासीन हैं। आज ज्ञान प्रवाह में हम उस उदासीनता से विरत हो करके उस प्रवाह में बहने की चेष्टा कर रहे हैं।

* * *